बी. सुरेश यादव

बनाम

शरीफा बी और अन्य

12 अक्टूबर, 2007

[एस. बी. सिन्हा और हरजीत सिंह बेदी, जे. जे.]

दंड संहिता, 1860- धारा 415 और 420- धोखाधड़ी-बिक्री का समझौता-पक्षों के मध्य- बिक्री का निष्पादन- निष्पादन से पहले, संपत्ति पर निर्माण का विध्वंस- दीवानी वादा, यह निर्धारित करने के लिए कि क्या निर्माण बेची गई संपत्ति का हिस्सा था- वाद के लंबित रहने के दौरान, विक्रेता द्वारा क्रेता के विरुद्घ धोखाधड़ी के अपराध का आरोप लगाते हुए आपराधिक शिकायत- शिकायत को रद्द करने के लिए आवेदन उच्च न्यायालय द्वारा खारिज की गई- अपील पर- अभिनिर्धारण किया गयाः शिकायत खारिज किए जाने योग्य उत्तरदायी- अभियुक्त/क्रेता के खिलाफ कोई मामला नहीं बनना पाया गया- शिकायतकर्ता/विक्रेता का रूख दीवानी वाद में उसके रुख के साथ असंगत होने के कारण विश्वसनीय नहीं है- विवाद अनिवार्य रूप से दीवानी प्रकृति का होने के कारण उसका निर्धारण सक्षम दीवानी न्यायालय द्वारा किया जाना चाहिए- दंड प्रक्रिया संहिता, 1973- धारा 482।

अपीलार्थी ने प्रत्यर्थियों को कुछ भूमि बेच दी। अपीलार्थी द्वारा उसके लिए बिक्री विलेख का निष्पादन किया गया था। बिक्री विलेख के निष्पादन से एक दिन पहले उक्त भूमि पर कथित तौर पर निर्माण किए गए दो कमरों को ध्वस्त कर दिया गया था। एक वाद इस विवाद के संबंध में दायर किया गया था कि क्या उक्त संपत्ति जिस पर दोनों कमरे थे, वह बिक्री विलेख में वर्णित संपत्ति की विषय वस्तु थी। प्रत्यर्थी संख्या 1 ने लिखित कथन में अपीलार्थी द्वारा विध्वंस करने की दलील नहीं दी। वाद के लंबित रहने के दौरान, प्रत्यर्थी नं. 1 ने अपीलार्थी पर भारतीय दंड संहिता की धारा 420 के तहत अपराध करने का आरोप लगाते हुए शिकायत दर्ज की। अपीलार्थी द्वारा धारा 482 दंड प्रकिया संहिता के तहत शिकायत रद्द करने के लिए किया गया आवेदन उच्च न्यायालय द्वारा खारिज कर दिया गया था। अतः यह वर्तमान अपील दायर की गई है।

विचार के लिए सवाल यह था कि क्या धारा 415 भारतीय दंड संहिता की परिभाषा के अनुसार धोखाधड़ी का मामला बन रहा है।

अपील को अनुमति देते हुए, न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि:

1. बिक्री विलेख को निष्पादित करते समय, अपीलार्थी ने कोई गलत या भ्रामक अभ्यावेदन नहीं किया। यहां पर उसे कुछ करने या नहीं करने, जिसे वह यदि धोखे में नहीं होता तो नहीं करता, करने या नहीं करने के लिये कोई बेईमानीपूर्ण कार्य या प्रलोभन भी नहीं था। स्वीकार्य रूप से

मामला पहले से ही एक सक्षम दीवानी न्यायालय के समक्ष लंबित है। इस हेतु कानून के एक सक्षम अदालत के निर्णय को लिया जाना आवश्यक है। अनिवार्य रूप से पक्षकारों के मध्य एक दीवानी विवाद है। [पैरा 12] [242-एफ-जी]

2. धोखाधड़ी के अपराध को स्थापित करने के लिए, शिकायतकर्ता को यह दिखाना आवश्यक है कि वादा या प्रतिनिधित्व करते समय अभियुक्त का उद्देश्य धोखाधड़ी या बेईमानी करने का था। इस प्रकृति के मामले में, एक पक्षकार द्वारा लंबित दीवानी वाद में लिए गए आधार पर विचार करने की अनुमति है। हालांकि इसका मतलब यह नहीं है कि किसी व्यक्ति का दायित्व दीवानी और आपराधिक दोनों नहीं हो सकता है। लेकिन जब एक शिकायत याचिका में कोई रूख अपनाया गया है, जो दीवानी वाद में अपनाये गये रूख के विपरीत या असंगत हो तो यह महत्वपूर्ण हो जाता है। जैसा कि बिक्री विलेख का निष्पादन दिनांक 30.9.2005 को किया गया था तथा कथित विध्वंस दिनांक 29.9.2005 को हुआ था, इसलिए यह उम्मीद की गई थी कि शिकायतकर्ता/प्रथम प्रतिवादी वाद में स्वयं द्वारा दाखिल किए गए लिखित कथन में वास्तविक शिकायत सामने लाएगी। उन्होंने, स्वयं को अच्छी तरह से ज्ञात कारणों के लिए, ऐसा करना नहीं चुना। इस प्रकार, यहाँ प्राप्त तथ्यों और

परिस्थितियों में, आपराधिक मामले में कार्यवाही करने के लिए कोई मामला नहीं बनता है। [पैरा 13 और 14] [242-एच; 243-ए-डी]

जी. सागर सूरी और अन्य बनाम उत्तरप्रदेश राज्य और अन्य, [2000] 2 एससीसी 636; अनिल महाजन बनाम भोर इंडस्ट्रीज लिमिटेड और अन्य, [2005] 10 एससीसी 228 और हीरालाल हरिलाल भगवती बनाम सीबीआई, नई दिल्ली, [2003] 5 एससीसी 257, को आधार माना गया है।

हीरालाल हरिलाल भगवती बनाम सी. बी. आई, नई दिल्ली, [2005] 3 एस. सी. सी. 670 और इंडियन ऑयल कॉर्पोरेशन बनाम एन. ई. पी. सी. इंडिया लिमिटेड और अन्य, [2006] 6 एससीसी 736, को संदर्भित किया गया है।

आपराधिक अपील क्षेत्राधिकारिता: आपराधिक अपील संख्या 1444/2007

आंध्रप्रदेश उच्च न्यायालय की आपराधिक याचिका संख्या 3498/2006 के निर्णय व अंतिम आदेश दिनांकित 06.11.2006 से।

एम. एन. राव, टी. एन. राव, पी. श्रीनिवास रेड्डी, मंजीत कृपाल और परमजीत अपीलार्थी के लिए।

प्रतिवादी के लिए नवीन आर. नाथ।

न्यायालय का निर्णय एस. बी. सिन्हा, जे. द्वारा दिया गया।

1. अनुमति दी गई।

2. महानगर मजिस्ट्रेट, साइबराबाद, मलकागिरी की अदालत में शिकायत को रद्द करने के लिए धारा 482 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत दायर किए गए एक आवेदन संख्या 216/2006 को आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय द्वारा इस आक्षेपित निर्णय से खारिज किया गया था।

3. इस मामले का मूल तथ्य विवाद में नहीं है।

4. इसमें प्रथम प्रतिवादी ने एक शिकायत याचिका दायर की। पक्षकारों ने एक 350 वर्ग गज के घर के बिक्री के लिए 23,80,000/- के प्रतिफल के लिए समझौता किया। 5,00,000/-रूपये का भुगतान अग्रिम रूप से किया गया था। अपीलार्थी द्वारा शेष 18,79,000/- रूपये प्राप्त करने पर दिनांक 30.09.2005 को एक बिक्री विलेख निष्पादित किया गया।

5. निर्विवादित रूप से दिनांक 29.05.2005 या उसके आसपास कथित रूप से उक्त् भूमि पर निर्मित दो कमरों को ध्वस्त कर दिया गया। उसके संबंध में एक वाद दायर किया गया। प्रत्यर्थी संख्या 1 भी उक्त वाद में प्रतिवादी था। लिखित कथन में उन्होंने वर्णित किया कि:

"जबकि यह वादी है, जिसने प्रतिवादी संख्या 2 और उसके परिवार के सदस्य दूर थे तब मौजूदा संरचना को ध्वस्त कर दिया, उसने यहां तक कि बिजली कनेक्शन का मीटर भी फेंक दिया तथा इसके संबंध में प्रतिवादी संख्या 2 ने मामले की सूचना संबंधित पुलिस को दी और वादी ने भी शपथ पत्र में हस्ताक्षर करके एक कैविएट आवेदन दायर किया है। जबकि इस माननीय न्यायालय के समक्ष, उन्हीं वादियों ने अपना अंगूठा निशान की है तथा वादी अंतरिम आदेश का लाभ उठाकर वादग्रस्त अनुसूचित सम्पत्ति पर जबरन अतिक्रमण करने की कोशिश कर रहे हैं"।

6. इसमें प्रत्यर्थी ने, अन्य तथ्यों के साथ-साथ, तर्क दिया कि वाद संपत्तियाँ बिक्री विलेख की विषय वस्तु की सम्पत्तियों से अलग हैं। हालांकि उपरोक्त लिखित कथन केवल मार्च, 2006 में दायर किया गया था, जिसमें प्रथम प्रत्यर्थी ने महानगर मजिस्ट्रेट, साइबराबाद, नेरदमेत की अदालत में अपीलार्थी द्वारा 420 भारतीय दंड संहिता का अपराध करने के संबंध में शिकायत दर्ज कराई थी।

7. श्री एम. एन. राव, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने अपीलार्थी की ओर से उपस्थित होकर प्रस्तुत किया कि शिकायत में निहित आरोप को उनके मूल रूप में पूर्ण रूप से सही मान लिया जाए तो भी कोई अपराध

नहीं बनता है। विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि प्रथम प्रत्यर्थी द्वारा दायर लिखित कथन के अवलोकन से ऐसा प्रतीत होता है कि उन्हें हर भौतिक समय पर कथित कमरों के विध्वंस के बारे में जानकारी थी

8. भारतीय दंड संहिता की धारा 415 इस प्रकार हैः

"धारा 415- "छल" जो कोई किसी व्यक्ति से प्रवंचन कर उस व्यक्ति को, जिसे इस प्रकार प्रवंचित किया गया है, कपट पूर्वक या बेईमानी से उत्प्रेरित करता है कि वह कोई सम्पत्ति किसी व्यक्ति को परिदत्त कर दे या यह सम्मति दे दे कि कोई व्यक्ति किसी सम्पत्ति को रखे या साशय उस व्यक्ति को, जिसे इस प्रकार प्रवंचित किया गया है, उत्प्रेरित करता है कि वह ऐसा कोई कार्य करे, या करने का लोप करे जिसे वह यदि उसे इस प्रकार प्रवंचित न किया गया होता तो, न करता, या करने का लोप न करता, और जिस कार्य या लोप से उस व्यक्ति को शारीरिक, मानसिक, ख्याति संबंधी या साम्पतिक नुकसान या अपहानि कारित होती है, या कारित होनी संभाव्य है, वह छल करता है, यह कहा जाता है।"

स्पष्टीकरण- तथ्यों का बेईमानी से छिपाना इस धारा के अर्थ के अंतर्गत प्रवंचना है।

भारतीय दंड संहिता की धारा 415 को धारा 24 में निहित 'बेईमानी' अभिव्यक्ति की परिभाषा के साथ पढ़ने की आवश्यकता है, जिसमें एक व्यक्ति को गलत तरीके से लाभ या दूसरे को गलत तरीके से नुकसान पहुंचाने के इरादे से कुछ किया जाना चाहिए।

9. इस बात पर विवाद है कि क्या उस संपत्ति, जिसपर पर दो कमरे कथित तौर पर स्थित थे, वह बिक्री विलेख में वर्णित सम्पत्ति की विषय वस्तु थी या नहीं। इस संबंध में एक दीवानी वाद पहले ही दायर किया जा चुका है। प्रत्यर्थी संख्या 1 को इस तथ्य की जानकारी थी कि उक्त दो कमरे ध्वस्त हो गए थे। इसके अलावा यह विवाद में नहीं है कि विध्वंस अपीलार्थी द्वारा नहीं किया गया था। प्रथम प्रत्यर्थी ने उक्त वाद में दायर अपने लिखित कथन में अपीलार्थी के विरुद्घ कोई आरोप नहीं लगाया है। उच्च न्यायालय ने अपने फैसले में यह राय दी गई कि, प्रथम दृष्टया, अपीलार्थी ने परिसर का विध्वंस होने के तथ्य को बिक्री विलेख के निष्पादन से पूर्व प्रथम प्रत्यर्थी से छिपाया था।

10. विचारण के लिए जो छोटा सवाल यह उठता है कि क्या भारतीय दंड संहिता की धारा 415 के अर्थ के भीतर छल का मामला बनता है अथवा नहीं।

11. छल के घटक हैंः

(i) किसी व्यक्ति को झूठा या गुमराह प्रतिनिधित्व करके या अन्य कार्यवाही या चूक करके धोखा देना

(ii) कपट पूर्वक या बेईमानी से उत्प्रेरित करे कि वह कोई सम्पत्ति किसी व्यक्ति को परिदत्त कर दे या यह सम्मति दे दे कि कोई व्यक्ति किसी सम्पत्ति को रखे या साशय उस व्यक्ति को, जिसे इस प्रकार प्रवंचित किया गया है, उत्प्रेरित करता है कि वह ऐसा कोई कार्य करे, या करने का लोप करे जिसे वह यदि उसे इस प्रकार प्रवंचित न किया गया होता तो, न करता, या करने का लोप न करता, और जिस कार्य या लोप से उस व्यक्ति को शारीरिक, मानसिक, ख्याति संबंधी या साम्पतिक नुकसान या अपहानि कारित होती है, या कारित होनी संभाव्य है।

12. विक्रय विलेख निष्पादित करते समय, अपीलकर्ता ने कोई गलत या भ्रामक प्रतिनिधित्व नहीं किया। उसकी ओर से ऐसा कुछ भी करने या न करने के लिए उकसाने का कोई बेईमानी भरा कार्य नहीं किया गया था जो वह नहीं कर सकता था या करने से चूकता यदि उसे धोखा न दिया गया होता। माना कि मामला सक्षम सिविल न्यायालय में लंबित है। इस संबंध में किसी सक्षम न्यायालय का निर्णय लिया जाना आवश्यक है। मूलतः, पक्षों के बीच का विवाद एक दीवानी विवाद है।

13. धोखाधड़ी के अपराध को स्थापित करने के उद्देश्य से, शिकायतकर्ता को यह दिखाना आवश्यक है कि वादा या प्रतिनिधित्व करते समय अभियुक्त का इरादा धोखाधड़ी या बेईमानी का था। इस प्रकृति के मामले में, लंबित दीवानी वाद में किसी पक्ष द्वारा अपनाए गए रुख पर विचार करना कानून में स्वीकार्य है। हालाँकि, हमारा इरादा ऐसा कानून बनाने का नहीं है कि किसी व्यक्ति का दायित्व एक ही समय में दीवानी और आपराधिक दोनों नहीं हो सकता है लेकिन जब किसी शिकायत याचिका में कोई रुख अपनाया गया हो जो सिविल मुकदमे में उसके द्वारा उठाए गए रुख के विपरीत या असंगत हो, तो इसका महत्व बढ़ जाता है। यदि कथित तथ्य हमारे सामने प्रस्तुत किया गया होता कि अपीलकर्ता ने उक्त दो कमरों को ध्वस्त करवा दिया और विक्रय पत्र के निष्पादन के समय उक्त तथ्य को छुपाया, तो मामला अलग हो सकता था। चूँकि विक्रय विलेख 30.9.2005 को निष्पादित किया गया था और कथित विध्वंस 29.9.2005 को हुआ था, यह उम्मीद थी कि शिकायतकर्ता/प्रथम प्रत्यर्थी उपरोक्त वाद में उसके द्वारा दायर लिखित कथन में अपनी वास्तविक शिकायत सामने लाएगा। उसने, उन्हीं कारणों से, जो उसे सबसे अच्छे से ज्ञात हैं, ऐसा करने का विकल्प नहीं चुना।

14. मामले के इस दृष्टिकोण में, हमारी राय है कि यहां प्राप्त तथ्यों और परिस्थितियों में, आपराधिक मामले को आगे बढ़ाने का कोई मामला नहीं बनता है।

15. *जी सागर सूरी और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य [(2000) 2 एससीसी 636],* में इस न्यायालय ने राय दी:

> ''8. संहिता की धारा 482 के तहत क्षेत्राधिकार का प्रयोग बहुत सावधानी से किया जाना चाहिए। अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते हुए उच्च न्यायालय को मामले की सतही जांच नहीं करनी है। यह देखा जाना चाहिए कि क्या कोई मामला, जो मूलतः दीवानी प्रकृति का है, को आपराधिक अपराध का जामा पहना दिया गया है। आपराधिक कार्यवाही कानून में उपलब्ध अन्य उपचारों का छोटा रास्ता नहीं है। आपराधिक अदालत को प्रक्रिया जारी करने से पहले काफी सावधानी बरतनी पड़ती है। आरोपी के लिए यह गंभीर मामला है। इस न्यायालय ने कुछ सिद्धांत निर्धारित किए हैं जिनके आधार पर उच्च न्यायालय को संहिता की धारा 482 के तहत अपने क्षेत्राधिकार का प्रयोग करना है। इस धारा के तहत क्षेत्राधिकार का प्रयोग किसी भी अदालत की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने या अन्यथा न्याय के उद्देश्य को सुरक्षित करने के लिए किया जाना चाहिए।''

उसमें, इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि परक्राम्य लिखत अधिनियम की धारा 138 के तहत एक आपराधिक शिकायत पहले से ही लंबित थी, धारा 406/420 के तहत आपराधिक शिकायत कानून की उचित प्रक्रिया का दुरुपयोग पाई गई।

16. *अनिल महाजन बनाम भोर इंडस्ट्रीज लिमिटेड और अन्य [(2005) 10 एससीसी 228],* में इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया:

> ''8. शिकायत का सार देखा जाना चाहिए। शिकायत में केवल 'छल' शब्द का प्रयोग कोई मायने नहीं रखता। मजिस्ट्रेट के समक्ष दायर की गई शिकायत में 'धोखा' और 'छल' तथा पुलिस के समक्ष दायर की गई शिकायत में धोखाधड़ी शब्दों के उल्लेख के अलावा, एमओयू में प्रवेश करते समय आरोपी के धोखे, धोखाधड़ी या छल के इरादे के बारे में कोई दावा नहीं किया जा सकता है, जिससे अनुमान लगाया जा सकता है कि आरोपी का इरादा शिकायतकर्ता को भुगतान के लिए धोखा देने का था। शिकायतकर्ता के अनुसार, कुल राशि 3,38,62,860/- रुपये में से 3,05,39,086/- रुपये का भुगतान किया गया, जबकि शेष 33,23,774/- रुपये थे। हमें शिकायत में उल्लेखित रकम के अंतर के सवाल पर जाने की जरूरत नहीं है, जो नोटिस में उल्लेखित राशि से कही अधिक है और साथ ही आरोपी के बचाव

और नोटिस के जवाब में अपनाए गए रुख के बारे में भी नहीं है क्योंकि शिकायतकर्ता का अपना मामला है कि तीन करोड़ रुपये से अधिक का भुगतान किया गया था तथा शेष रकम के लिए आरोपी उपरोक्त कारण बता रहा था। इन पहलुओं पर गौर न करने का अतिरिक्त कारण यह है कि संबंधित रकम के लिए दोनों पक्षों के बीच एक सिविल वाद लंबित है।"

17. *हीरा लाल हरि लाल भगवती बनाम सीबीआई, नई दिल्ली [(2003) 5 एससीसी 257]* में, इस न्यायालय ने राय दी कि:

"निर्णयों की श्रृंखला द्वारा यह स्थापित कानून है कि छल के अपराध को स्थापित करने के लिए, शिकायतकर्ता को यह दिखाना आवश्यक है कि वादा या प्रतिनिधित्व करते समय अभियुक्त के पास धोखाधड़ी या बेईमानी का इरादा था। बाद में वादा पूरा करने में उसकी विफलता से, शुरुआत में ही ऐसा दोषपूर्ण इरादा नहीं माना जा सकता है जब वादा किया गया था। अभिलेखों से पता चलता है कि छूट प्रमाण-पत्र में आवश्यक शर्तें शामिल थी जिनका मशीन के आयात के बाद अनुपालन करना आवश्यक था। चूंकि जीसीएस इसकी अनुपालन नहीं कर सका, इसलिए, उसने छूट प्रमाण-पत्र का लाभ उठाए बिना आवश्यक शुल्कों का भुगतान सही ढंग से किया। जीसीएस का आचरण

स्पष्ट रूप से इंगित करता है कि छूट के लिए आवेदन करते समय पदाधिकारी के रूप में जीसीएस या अपीलकर्ताओं का कोई धोखाधड़ी या बेईमान इरादा नहीं था। चूंकि बेईमानी और धोखाधड़ी के इरादे का अभाव था, इसलिए धारा 420 भारतीय दंड संहिता के अपराध का प्रश्न नहीं उठता है।''

हीरा लाल हरि लाल भगवती बनाम सीबीआई, नई दिल्ली [(2005) 3 एससीसी 670] और *इंडियन ऑयल कॉर्पोरेशन बनाम एनईपीसी इंडिया लिमिटेड और अन्य [(2006) 6 एससीसी 736]}* भी देखें।

18. उपरोक्त कारणों से, आक्षेपित निर्णय कायम नहीं रखा जा सकता। इसे तदनुसार रद्द किया जाता है। अपील की अनुमति दी गई। कोई लागत नहीं।

यह अनुवाद आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस टूल 'सुवास' की सहायता से अनुवादक न्यायिक अधिकारी कोमल मंडल (आर.जे.एस.) द्वारा किया गया है।

अस्वीकरण: यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रामाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।